

भगवान बुद्ध

भगवान बुद्ध



लेखक

श्री चन्द्रिकाप्रसाद मिश्र

ज्ञान-वीर प्रकाशन

प्रकाशक
ज्ञान-वीर बन्धु
आंग्रे का बाजार, ग्वालियर

प्रथम संस्करण
मूल्य १)

मुद्रक
राम उजागर पाण्डेय
छपाई–भवन,
नया बाजार, ग्वालियर

अनुक्रम



१—लुम्बिनी

हिमालय की बर्फ से ढकी चोटियों के दक्षिणी ढलान पर, जहाँ आज नैपाल का राज्य है, आज से ढाई हजार वर्ष पहले शाक्य वंशीय क्षत्रियों का राज्य था। शाक्य वंशीय क्षत्रिय अयोध्या के सूर्यवंशियों की ही एक शाखा थे। और भगवान रामचन्द्र के ही वंशधर थे।

महाराज शुद्धोदन एक वीर और शान्त स्वभाव-पुरुष थे। उनकी रानी महामाया की धर्म में रुचि थी। दूसरे राजाओं के समान महाराज शुद्धोदन न तो

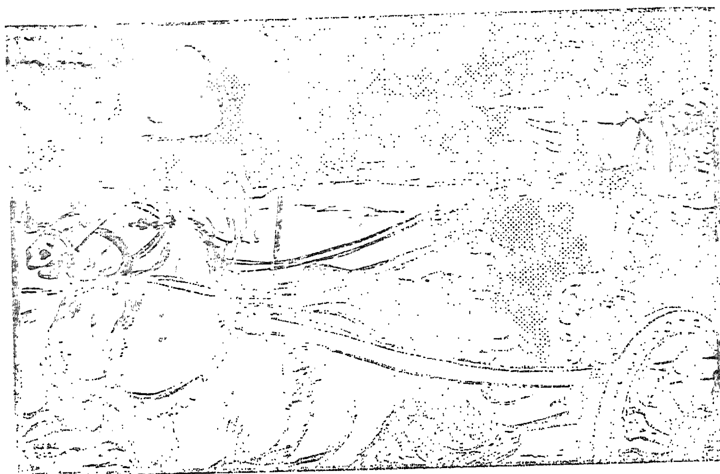
किसी को बल पूर्वक दबाकर उसका राज्य हड़पने की कोशिश करते थे न किसी के साथ निर्दयता का व्यवहार करते थे। उनकी प्रजा उन्हें प्राणों के समान प्यार करती थी।

एक दिन महारानी महामाया रथ पर बैठकर लुम्बिनी के वन में प्रकृति की सुन्दर शोभा देखने गईं। वन में ठंडी सुगंधित हवा धीरे-धीरे चल रही थी। मृगों के बच्चे इधर-उधर दौड़कर खेल रहे थे, वृक्षों पर पक्षी मधुर शब्द कर रहे थे और झरनों का जल पर्वतों से गिरकर छोटी नदी के रूप में कल-कल करता बह रहा था। महारानी का मन यहाँ रम गया और वे बड़ी देर तक उस शोभा को देखती रहीं। एकाएक उन्हें कुछ कष्ट-सा मालूम हुआ। वे उठकर खड़ी हुईं। दासियाँ दौड़ी हुई आईं। उनके आते ही महामाया ने एक सुन्दर बालक को जन्म दिया। दासियों ने बालक को सम्हाला। महारानी ने एक बार आँखें भरकर अपने हाल के पैदा हुए बच्चे को देखा और एक ठंडी साँस भरकर आँखें मूँद लीं। वहीं उनकी मृत्यु हो गई।

सेवकगण महारानी की लाश और नन्हें बालक को लेकर कपिलवस्तु आए। महारानी की मृत्यु से सब

लोग बड़े दुखी हुए परन्तु युवराज के जन्म की खुशी भी कम न थी । धीरे-धीरे उस सुन्दर राजकुमार का मुख देखकर लोग अपनी महारानी की मृत्यु का दुख भूल गए ।





२—रोग क्यों ?

महाराज ने नगर के विद्वान ब्राह्मणों को बुलाकर पुत्र का नामकरण कराया। पंडितों ने विचारकर उसका नाम सिद्धार्थ रखा। धीरे-धीरे राजकुमार सिद्धार्थ बड़े होने लगे। वे इतने रूपवान थे कि स्त्री-पुरुष उनकी ओर टकटकी बाँधकर देखते रह जाते थे। उनका रंग गोरा था जिसमें से हलकी कमल के फूल सी लाल झाईं झलकती थी। माथा उनका खूब चौड़ा था और ऐसा मालूम होता था कि उसमें से सूर्य की-सी किरणें फूटी पड़ती हैं। जरा सयाने

होने पर सारथी उन्हें रथ पर बैठाकर घुमाने के लिए ले जाने लगा। एक दिन राजकुमार सिद्धार्थ ने देखा कि एक मनुष्य मार्ग में एक ओर लकड़ी के सहारे कराहता हुआ जा रहा है। उन्होंने सारथी से पूछा, "यह आदमी इस तरह क्यों कराह रहा है ?"

सारथी ने कहा, "यह रोगी है।"

"रोगी कौन होता है ?" राजकुमार ने फिर प्रश्न किया।

सारथी ने बताया कि "जिसे कोई रोग या पीड़ा होती है उसे रोगी कहते हैं।"

सिद्धार्थ ने पूछा, "रोग क्यों होता है ?"

सारथी राजकुमार की ओर देखकर कुछ डर-सा गया। वे अत्यंत गंभीर हो गए थे, मस्तक पर चिन्ता की रेखाएँ दिखाई देने लगी थीं। सारथी के चुप रहने पर उन्होंने फिर पूछा, "हाँ, तुमने बताया नहीं। रोग क्या है और क्यों होता है ?"

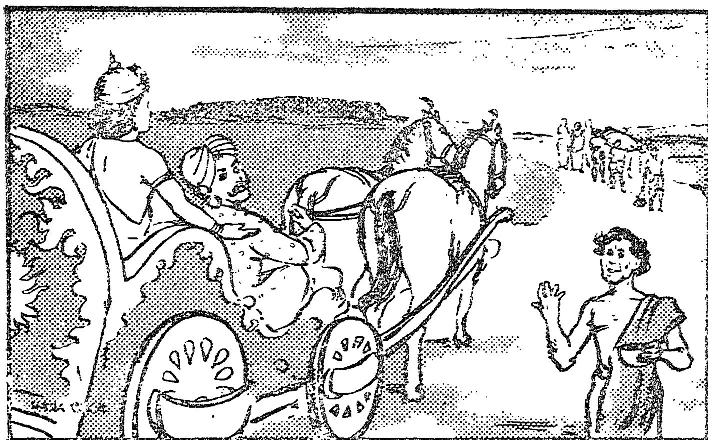
सारथी ने कहा, "राजकुमार ! रोग तो होते ही रहते हैं। शरीर के साथ ही रोग भी संसार में आते

हैं और सदा उसे पीड़ित करते रहते हैं। बुद्धिमान उपाय करके बच जाते हैं परन्तु मूर्ख उनसे कष्ट पाते हैं।"

सिद्धार्थ ने कुछ सोचकर कहा, "जो बुद्धिमान हैं वे मूर्खों को भी बुद्धिमान बनाकर इन रोगों से क्यों नहीं बचाते ?"

बिचारा सारथी राजकुमार के इस प्रश्न को सुनकर हक्का-बक्का-सा रह गया। वह अपनी धुंधली आँखों को फाड़कर बड़े आश्चर्य के साथ सिद्धार्थ के मुख की ओर देखता रहा। उसके मुख से एक भी शब्द न निकला। सचमुच ऐसा प्रश्न आज तक कभी किसी ने न किया था।





३—बुढ़ापा और मृत्यु

जैसे जैसे सिद्धार्थ बड़े होते गए उनकी दुःख और शोक के विषय में जिज्ञासा भी बढ़ती गई। एक दिन उन्होंने एक बूढ़े आदमी को लकड़ी के सहारे बड़ी कठिनता से चलते देखा। उन्होंने सारथी से पूछा, "क्यों जी, इस आदमी को क्या हो गया है?"

सारथी ने उत्तर दिया, "इसे वही हुआ है जो एक दिन सब को होता है। यह बूढ़ा हो गया है। अब इसके हाथ-पाँव काम नहीं देते।"

"फिर ये आराम से लेटता क्यों नहीं है?"

सिद्धार्थ ने फिर पूछा। सारथी को हँसी आ गई, अपने को सम्हालकर उसने कहा, "बूढ़ों को भी भूख-प्यास तो सताती ही है। कमाने की शक्ति नहीं है पर खाए बिना तो काम नहीं चल सकता। बिचारा दस जगह भटकेगा तब कहीं किसी एक घर से कुछ मिलेगा।"

राजकुमार इस उत्तर को सुनकर चुप रह गए। परन्तु उनके मन में भाँति-भाँति के प्रश्न उठने लगे; "बुढ़ापा सब को आता है, यह बात सब लोग जानते हैं फिर मिलकर उसका उपाय क्यों नहीं करते। इन बूढ़ों को द्वार-द्वार भटकना क्यों पड़ता है? क्या इनके लिये भोजन इनके घर पर नहीं पहुँचाया जा सकता?"

इसी प्रकार उन्होंने एक दिन देखा कुछ लोग एक मुर्दे को लेकर रोते हुए जा रहे हैं। सारथी ने उन्हें बताया कि वह मर गया है और उसके घर के लोग इस लिए रो रहे हैं कि अब उनकी सहायता करने वाला कोई नहीं रहा।

उन्होंने पूछा, "क्या मरना भी आवश्यक है?"

सारथी ने कहा, "युवराज! मरना आवश्यक नहीं अनिवार्य है। एक न एक दिन सभी को मरना होता है।"

इस उत्तर को सुनकर भी युवराज चुप हो गए। परन्तु उनके मन में एक तूफान-सा उठ खड़ा हुआ।

"संसार में दुखियों, पीड़ितों और कष्ट पाने वालों की संख्या बहुत है परन्तु कैसे आश्चर्य की बात है कि उन्हें इससे छुड़ाने का उपाय कोई नहीं कर रहा है ! सब खाने-पीने और आनन्द मनाने में लगे हैं और धीरे-धीरे रोग बुढ़ापा और मृत्यु के चंगुल में फँसते चले जा रहे हैं ।"





४–हंस किसका ?

सिद्धार्थ के एक चचेरे भाई थे। उनका नाम था देवदत्त। वे बड़े क्रूर स्वभाव के थे, ठाठ-बाट से रहते थे और अपने किसी काम में कोई बाधा सहन न करते थे। एक दिन उन्होंने आकाश में उड़ते हुए एक हंस पर बाण चलाया। बिचारा हंस चोट खा-कर छटपटाता हुआ राजकुमार सिद्धार्थ के पैरों के पास जा गिरा। राजकुमार को उस पर दया आई। उन्होंने उसे गोद में उठा लिया, उसकी पीठ पर हाथ फेरा, धीरे से उसकी बगल में घुसे हुए बाण को बाहर खींचा और उसकी चोंच में पानी डाला। उन्होंने

उसके जख्म को धोकर उसपर पट्टी बाँध दी।

देवदत्त को जब मालूम हुआ कि उनका शिकार सिद्धार्थ ने ले लिया है तो वे उनसे झगड़ा करने लगे। उनका कहना था कि जिसके बाण से जीव आहत होता है उस पर उसी का अधिकार होता है। आखेट का यही नियम है।

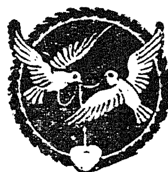
सिद्धार्थ का कहना था कि आखेट के नियम अपने स्वार्थ की दृष्टि से बनाए गए हैं। वे मुझे मान्य नहीं हैं। प्रकृति का नियम यह है कि मारने वालों से बचाने वाले का अधिकार अधिक होता हैं। मैंने हंस की रक्षा की है, इसीलिए इस हंस पर मेरा अधिकार हैं। यह तुम्हें नहीं मिल सकता।

विवाद अधिक बढ़ा। देवदत्त झगड़ा करने पर उतारू हो गया, परन्तु सिद्धार्थ भी अपनी बात पर अड़े थे। भय से वे किसी बात को स्वीकार करने को तैयार न थे। अन्त में राजसभा के सामने यह मामला रखा गया। महाराज ने दोनों राजकुमारों की बातें सुनीं। विद्वानों और मंत्रियों ने भी उन पर विचार किया। सब की बातें सुनकर महाराज शुद्धोदन बोले, आखेट का नियम उसी समय लागू हो सकता है, जब

दोनों पक्ष शिकारी हों और दोनों का प्रयोजन समान हो। परन्तु यहाँ दोनों का प्रयोजन अलग-अलग है। देवदत्त मांस खाने के लिए और सिद्धार्थ उसकी रक्षा के लिए पक्षी की माँग करते हैं। ऐसी स्थिति में दोनों में कौन-सी भावना कल्याणकारी है यह देखकर निर्णय देना होगा।"

महाराज की बात सुनकर सारी सभा बोल उठी, "राजकुमार सिद्धार्थ का काम अधिक कल्याणकारी है। हंस उन्हीं को दे दिया जाय।"

महाराज के निर्णय से हंस सिद्धार्थ को मिल गया। परन्तु देवदत्त ने इस निर्णय से अपने को अपमानित समझा। और वह सिद्धार्थ से द्वेष रखने लगा।





५—दो दिन का तमाशा

पुत्र को इस प्रकार सांसारिक सुखों से विरक्त होकर रात-दिन विचारों में डूबे रहते देखकर महाराज शुद्धोदन को बड़ी चिन्ता हुई। वे चाहते थे कि उनका पुत्र एक प्रतापी और न्यायप्रिय राजा बने। परन्तु उसकी स्थिति एक संन्यासी की-सी होती जाती थी। उन्होंने उसके मन को बहलाने के लिए शिकार, भ्रमण, नृत्य और संगीत की व्यवस्था की। राजमहल में अनेक गुणवती गायिकाओं और नर्तकियों को आश्रय मिल गया। राजकुमार सिद्धार्थ बड़े ध्यान से उनकी कला को देखते थे परन्तु उनका मन उसमें न लगता था।

इसी समय उनका विवाह एक परम रूपवती राज-कन्या यशोधरा के साथ होगया। यशोधरा के रूप और गुणों ने सिद्धार्थ को कुछ दिनों के लिए बाँध लिया। वे उसके साथ उपवनों में घूमने जाते थे, नृत्य, गान आदि के उत्सवों में सम्मिलित होते थे और दीन-दुखियों को दान देकर उनके कष्टों को दूर करते थे। यह सब सुनकर महाराज शुद्धोदन की चिन्ता कुछ कम हुई। इसी समय यशोधरा को पुत्र प्राप्ति हुई। राज-महल में आनंदोत्सव मनाया गया, नगरवासी राजा के महल में बधाई देने आए। यशोधरा पुत्र का मुख देख-कर फूली न समाई वह बिलकुल उसके स्वामी के समान ही था। उसने उसका मुख चूमा और उसे छाती से लगा लिया।

इधर जब राजमहल में सब लोग दिन भर के थके-मांदे नींद की गोद में विश्राम कर रहे थे—राजकुमार सिद्धार्थ अपने कमरे में बैठे जीवन की आलोचना कर रहे थे। उनके सामने रोगी, बृद्ध और मृत व्यक्ति की आकृति एक-एक करके खड़ी हो रही थी, "हे राजकुमार ! हमने सोचा था कि तुम संसार के कष्टों को दूर करने का कोई उपाय करोगे, परन्तु तुम तो स्वयं भी उसी चक्कर में फँस गए हो। ये जो

रूप, गुण, प्रेम का तमाशा तुम देख रहे हो। यह भी दो दिन का ही है। हमने भी यही तमाशा देखा था, परन्तु न जाने कब, किधर से आकर इन तीनों शत्रुओं ने हमें दबोच लिया। जीवन में कुछ भी करना है तो इस चक्कर से बाहर निकलो। संसार दुःख से छटपटा रहा है। उसको कल्याण का मार्ग दिखाओ।"

सिद्धार्थ को रात भर नींद नहीं आई। उन्हें मालूम हुआ कि जैसे वे राह भूलकर कहीं भटक रहे हैं। अन्त में उन्होंने निश्चय किया कि वे राज्य, नगर, संपत्ति, परिवार, पुत्र और पत्नी सबको छोड़कर कल्याण-पथ की खोज में निकलेंगे।





६—गृह-त्याग

एक दिन रात्रि के समय जब सारा नगर निद्रा की गोद में सुख से सो रहा था, सिद्धार्थ ने घर छोड़ देने का निश्चय किया। वे अपने कमरे से बाहर राज-महल के द्वार तक आए। परन्तु उनके मन में आया कि अब मैं जन्म भर के लिए घर छोड़ रहा हूँ। एक बार चलने से पूर्व पत्नी और बच्चे को तो जी भर देख लूँ। वे लौटकर सीधे यशोधरा के कमरे की ओर चल दिये। स्थान-स्थान पर दासियाँ नींद में पड़ी खुर्राटे ले रही थीं। वीणा मृदंग आदि बजाने वाली अनेक सुन्दर स्त्रियाँ अपने-अपने बाजों को बगल में

दबाए सो रही थीं। नाचने वालियों के घुँघरू पैरों में ही बँधे थे और सोते में जब वे करवट बदलती थीं तो छम-छम की ध्वनि हो उठती थी। गोखों में टँगे पक्षी भी सो रहे थे। सिद्धार्थ का ध्यान इनमें से किसी की ओर न गया। वे सीधे यशोधरा के कमरे में गए। दरवाजे के पास ही खड़े होकर उन्होंने उसकी ओर देखा। वह नींद में बेसुध थी। सिर पर से कपड़ा हट गया था, छाती भी खुली हुई थी। शायद राहुल को दूध पिलाते-पिलाते ही सो गई थी। राहुल माँ के स्तन से मुँह लगाए सो रहा था। सिद्धार्थ की इच्छा हुई कि चलने से पहले पुत्र को गोद में उठाकर प्यार कर लें। परन्तु यह सोचकर कि वह जग जायगा और फिर उसके रोने से यशोधरा और दासियाँ भी जग जायँगी उन्होंने अपना विचार छोड़ दिया।

क्षण भर खड़े रहकर उन्होंने अपने डगमगाते मन को स्थिर किया और फिर मुड़कर चल दिये। मार्ग में कहीं कोई बाधा न आई। सभी पहरेदार नींद में खुर्राटे ले रहे थे।

सिद्धार्थ ने अपने सारथी छंदक को जगाया और उससे तुरन्त रथ लाने को कहा। छंदक चकित-सा

कुमार की ओर ताकता रहा। "इतनी रात में इन्हें कहाँ जाने की धुन सवार हुई है ?" यही बात वह अपने मन में सोचने लगा।

रथ बड़े वेग से नगर में से जा रहा था परन्तु किसी की नींद न खुलती थी। जगह-जगह तोरण, कलश, पताका आदि मंगल चिन्ह दिखाई दिये जो राहुल के जन्म की खुशी में नगर को सजाने के लिए लगाए गए थे। परन्तु राजकुमार को जल्दी थी कपिलवस्तु नगर और राज्य की सीमा पार करने की।

राज्य की सीमा पार करते ही उन्होंने छन्दक को रथ रोकने का आदेश दिया। रथ से नीचे उतर कर उन्होंने सब राजवस्त्र, मुकुट, रत्नादि छंदक को देकर कहा, "देखो छंदक! मैं अब जा रहा हूँ। तुम प्रसन्न रहना, सब लोगों को धैर्य देना और कहना कि सिद्धार्थ कल्याण-पथ की खोज में गया है। वह संसार से दुखों और कष्टों का अन्त कर देगा। तुम वृद्ध हो मुझे आशीर्वाद दो कि मैं अपने लक्ष्य को पा सकूँ।"

छंदक राजकुमार के चरणों पर गिरकर रोने लगा। "राजमहलों में सुखों की गोद में पला यह शरीर अब जंगलों और पर्वतों में काँटों और पत्थरों

से टकराता फिरेगा। हजारों को अन्न-वस्त्र दान करने वाला अब अपने भोजन के लिए द्वार-द्वार घूमेगा। हे विधाता! यह कैसा विधान है?"

सिद्धार्थ ने छंदक को समझाकर विदा किया और सबेरे के सूर्य की पहली किरण के साथ वे उस जंगली और पहाड़ी मार्ग में एक ओर को चल दिये। सिद्धार्थ की यह यात्रा ही महाभिनिष्क्रमण कहलाती है।





७—साधना और बोधि

सिद्धार्थ के सामने एक ही लक्ष्य था, "त्रस्त और दुखी विश्व की रक्षा करना।" वे अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कठिन से कठिन साधना करने को तैयार थे। उन्होंने विद्वानों के पास रहकर वेद, शास्त्र और दर्शन पढ़े। उन्हें ज्ञान मिला परन्तु उससे उन्हें उनके उद्देश्य की पूर्ति की कोई आशा न हुई।

इसके पश्चात् उन्होंने कठिन तपस्या आरंभ की, इस समय इनके साथ पाँच साथी भी थे जो सत्य की खोज में इन्हीं की तरह संसार छोड़कर निकले थे। सिद्धार्थ

की कठिन तपस्या देखकर ये साथी उनके परम भक्त बन गए। परन्तु जब एक दिन गौतम ने यह कहा, कि तप के द्वारा भी जो हमें चाहिए वह नहीं मिलेगा। तब इनका मन सिद्धार्थ की ओर से फिर गया। उन्होंने कहा, "तुममें विश्वास और स्थिरता की कमी है।" और वे सिद्धार्थ को अकेला छोड़कर चले गए।

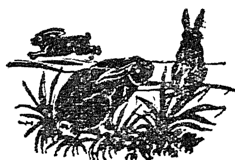
इसके पश्चत् सिद्धार्थ ने योग साधना की और उन्हें वे तमाम सिद्धियाँ सहज ही मिल गईं जिनके कारण योगियों को महत्व प्राप्त होता है। परन्तु सिद्धार्थ ने योग को भी अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपर्याप्त समझा।

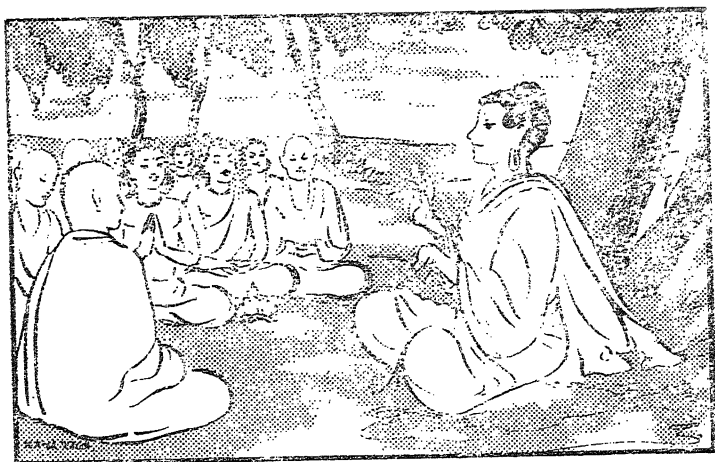
अब वे एक पूर्णज्ञानी तपस्वी और योगी थे। परन्तु उनका लक्ष्य अब भी दूर था। वे गया में जाकर रहने लगे। एक दिन एक बट बृक्ष के नीचे समाधिस्थ अवस्था में उन्हें दिव्यज्ञान (बोधि) प्राप्त हुआ। इसके पश्चात् ही उनका नाम बुद्ध हुआ। सिद्धार्थ के मन की तमाम शंकाएँ और चिन्ताएँ इसी क्षण से दूर हो गईं। उन्हें अपार शान्ति प्राप्त हुई। संसार का भूत, भविष्य, वर्तमान सब उन्हें प्रत्यक्ष दिखाई देने लगा और वे बड़े दृढ़ निश्चय के साथ

प्रत्येक मनुष्य की प्रत्येक शंका का समाधान करने लगे ।

वे एक ऐसी ज्योति बन गए जो अनेक ज्योतियों को जला कर संसार के अंधकार का नाश करती है ।

उन्होंने कहा, "अपनी ज्योति तू स्वयं बन ।"





८—धर्मोपदेश

बोधि प्राप्त होने के उपरान्त भगवान बुद्ध को अपने उन साथियों की याद आई जो तपस्या के दिनों में उनसे अलग हो गए थे। उन्होंने उन्हें सारनाथ में ढूँढ़ लिया। वे अब भी असंतुष्ट थे। सत्य ज्ञान उन्हें नहीं मिला था। बुद्ध ने कहा, "साथियो! मैंने वह वस्तु पा ली है जिसके लिए हम सब विकल थे।"

साथियों को विश्वास न हुआ। कई दिन तक उनसे वाद-विवाद होता रहा। उन्होंने बहुत से प्रश्न किये, जिनके उत्तर बुद्ध ने संतोषजनक रीति से दिये।

अन्त में उन्हें यह विश्वास हो गया कि इस मनुष्य को कोई असाधारण शक्ति अवश्य मिली है। वे पुनः बुद्ध के शिष्य हो गए और जीवन भर उनके उपदेशों के अनुसार आचरण करते रहे तथा दूसरों को भी उपदेश देते रहे।

भगवान बुद्ध के समझाने का तरीका बहुत ही अच्छा था। वे सदा लोगों की बोलचाल की भाषा में उपदेश देते थे। संस्कृत को वह थोड़े से पंडितों की ही भाषा मानते थे। जनता उसे समझ न सकती थी इसी से लोक कल्याण के लिये वे अपने उपदेश लोक-भाषा में देते थे।

वे आचरण की पवित्रता को सबसे बड़ा महत्व देते थे। मन को सब प्रकार के विकारों से रहित करके, भाषण और आचरण में भी पवित्र रहने की बात वे कहते थे। इसी से बौद्ध धर्म में मन, वचन और कर्म की पवित्रता को बहुत बड़ा स्थान मिला है। वे अहिन्सा को सबसे बड़ी शक्ति मानते थे और मन, वाणी और कर्म तीनों में उसका समान आचरण चाहते थे।

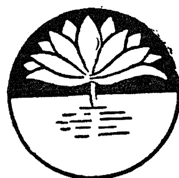
कपिलवस्तु में बुद्ध के आने से एक अपूर्व उत्साह फैल गया। स्वयं महाराज शुद्धोदन तथा उनके परिवार के अनेक लोगों ने उनका उपदेश सुना। यहाँ तक कि उनके परम विरोधी देवदत्त भी उनसे दीक्षा लेकर भिक्षु बन गए। जब बुद्ध का उपदेश सुनने को सारे नगर में इतना उत्साह था उस समय लोगों को यह जानकर आश्चर्य हुआ कि यशोधरा ने इस तमाम आयोजन में कोई भाग नहीं लिया। वह मानिनी अपने पुत्र राहुल के साथ अपने कक्ष में ही रही। भगवान ने उसके मन के भाव को समझ लिया। वे स्वयं उठे और उसके कमरे के द्वार पर जाकर आवाज लगाई "भिक्षां देहि"

यशोधरा ने अश्रुपूर्ण नयनों से स्वामी को देखा, आगे बढ़कर उनका पात्र ग्रहण किया, उनके पैर पखार कर आसन पर बैठाया और काँपती हुई वाणी से कहा, "नाथ ! इस अनाथिनी के पास देने योग्य रहा ही क्या है ? फिर भी मैं दूँगी और ऐसा दान दूँगी जो संसार में अपनी जोड़ी नहीं रखता।" यह कहकर उसने अपने पुत्र राहुल को बुलाकर उनके चरणों पर डाल दिया। इस समय तक महाराज तथा अन्य लोग भी वहाँ आ पहुँचे थे। सबकी आँखों से झर-झर आँसू बह रहे थे। शुद्धोदन को अपने सामने

केवल अन्धकार ही अन्धकार दिखाई देता था।

तथागत ने अपने पुत्र राहुल पर एक दृष्टि डाली। अब वह सोलह वर्ष का युवक था, चेहरे पर कान्ति थी, आँखों में शील और करुणा की नदी उमड़ रही थी। उन्होंने उसके सिर पर हाथ फेरा और कहा, "उठो वत्स और संसार को कष्टों से मुक्ति दिलाने के लिए प्रव्रजित हो।" राहुल का सिर मुड़ा कर उसे सन्यासियों के वस्त्र पहना दिये गए और वह संघ में एक भिक्षु के रूप में प्रविष्ट हुआ।

यशोधरा के लिए संसार सूना हो गया। लोक-कल्याण के लिए पति और पुत्र दोनों का दान कर देने वाली इस महामहिमामयी नारी की महिमा का कहाँ तक बखान किया जाय। वह स्वयं महल में एक तपस्विनी की भाँति रहकर अपना शेष जीवन व्यतीत करने लगी।





१०–माता का आग्रह

भगवान बुद्ध के जन्म के समय ही उनकी माता का देहान्त हो गया था। उनका लालन-पालन उनकी मौसी प्रजावती ने किया था। संसार में माँ के प्रति जितनी भी भक्ति होती है वह सिद्धार्थ ने प्रजावती को समर्पित की। वह भी उन्हें अपने सगे बेटे के समान ही प्यार करती थी।

जब भगवान कपिलवस्तु में लोगों को उपदेश दे रहे थे उस समय प्रजावती ने भी दीक्षा लेने की इच्छा प्रगट की। परन्तु संघ में स्त्रियों को भिक्षुजी बनाने

का नियम न था अतः भगवान ने उनके बार-बार प्रार्थना करने पर भी वैसा करना स्वीकार न किया। परन्तु प्रजावती ने दीक्षा ग्रहण करने का दृढ़ संकल्प कर लिया था। उसने भी पीछा न छोड़ा।

जब भिक्षुओं सहित भगवान कपिलवस्तु से वैशाली की ओर चल दिये तब उसने अपनी सखियों से परामर्श करके सबके साथ संन्यासिनियों का वेष धारण किया और पैदल ही वैशाली की ओर चल दी।

महास्थविर आनंद ने देखा कि माता प्रजावती सैकड़ों सहेलियों सहित आई हैं। उनका शरीर पसीने से भीग गया है। मुख श्री मुरझा गई है, थकान अंग-अंग से प्रगट हो रही है और पैरों में छाले पड़-पड़ कर फूट गए हैं। उन्होंने जाकर भगवान से निवेदन किया, "महाराज माता प्रजावती सैकड़ों सखियों सहित भिक्षुणी वेष में द्वार पर उपस्थित हैं।"

भगवान ने कहा, आनंद नियम सभी के लिए समान रूप से मान्य होना चाहिए। क्या संघ में स्त्रियों का प्रवेश मंगल कारक हो सकता है?"

भगवान बुद्ध थोड़े से व्यक्तियों का सुधार ही नहीं चाहते थे। वे सारी मानव जाति को जगाकर पाप से विमुख करके धर्म की स्थापना करना चाहते थे। उनका उपदेश सुनने को लोगों की बड़ी-बड़ी भीड़ें जुड़ा करती थीं। धीरे-धीरे राजा-प्रजा, अमीर-गरीब, ब्राह्मण-शूद्र, स्त्री-पुरुष सभी उनके नए धर्म में दीक्षित होने लगे।

उस समय के बहुत से विद्वानों ने शास्त्रार्थ किया और जब भगवान ने उनके तर्कों का खंडन करके सही बात सामने रखी तो उन्होंने उनके आगे सिर झुका दिया और उनके शिष्य हो गए। धीरे-धीरे उनके भक्तों की संख्या बढ़ने लगी। अनेक राजाओं ने उनके चरणों में अपना मस्तक झुकाया, कपिलवस्तु में उनका परिवार उनका अनुयायी हो गया और पिता ने भी उनसे दीक्षा ली। श्रावस्ती का राजा प्रसेनजित भी उनपर बहुत श्रद्धा रखता था। व्यापारिवर्ग भी उनपर अपार श्रद्धा रखता था, श्रावस्ती के अनाथ पिंडक और सुजाता ने उनके लिए करोड़ों रुपये खर्च करके विहार बनवाए थे। मगध, सारनाथ, काशी, राजगृह और श्रावस्ती में उनके प्रसिद्ध विहार

बने जहाँ हजारों भिक्षु पवित्र जीवन बिताते हुए संसार को कल्याण का मार्ग बताने लगे।

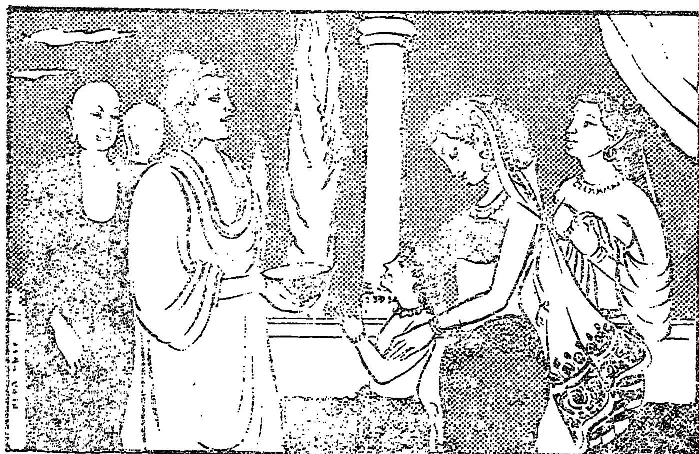
उनके शिष्यों के कई भेद थे। कुछ लोग संसार त्यागी होकर भिक्षु बन जाते थे। ये भिक्षु विहारों में रहते थे, भिक्षा माँग कर भोजन करते थे और घूम-घूम कर लोगों को कल्याण का मार्ग बताते थे। साधारण लोग संसार का काम करते हुए भगवान बुद्ध के उपदेशों के अनुसार मन वाणी, और कर्म से पवित्र बनने की चेष्टा करते थे। इनकी संख्या बहुत अधिक थी। आज हम जिसे उत्तरप्रदेश कहते हैं उसका पूर्वी भाग और विहार का पश्चिमी भाग भगवान बुद्ध के सामने ही उनका अनुयायी हो गया था।

भगवान बुद्ध ढकोसलों के विरोधी थे। ज्योतिषियों द्वारा कही गई मनुष्यों के भाग्य विषयक बातों को भी वे व्यर्थ ही मानते थे। मनुष्यों के बीच किसी प्रकार के भेद-भाव को वे अनुचित समझते थे। उनके मत में सब मनुष्य समान थे। उनके अनुसार करुणा मनुष्य जीवन को पवित्र बनाने में बड़ा काम करती है। यज्ञों में होने वाली बलि को वे एक निन्दनीय कर्म मानते थे और इसीलिये यज्ञों के विरोधी थे। कठिन तपस्या करके शरीर को घुलाने के विषय मेंउनका

मत था "शरीर एक वीणा है। इसके तारों को न इतना अधिक खींचो कि वे टूट जायँ और न इतना ढीला रखो कि अच्छे स्वर ही न निकल सकें।"

इस प्रकार भगवान बुद्ध उस समय युग के महा-पुरुष थे। जो उनके शिष्य नहीं थे। वे भी उन पर श्रद्धा रखते थे।





९—पुनः परिवार के बीच

महाराज शुद्धोदन को जब मालूम हुआ कि उनका पुत्र बुद्ध होकर विश्व को कल्याण-पथ दिखा रहा है तो उन्होंने अपने मंत्रियों को उन्हें कपिलवस्तु ले आने के लिए भेजा। भगवान ने सैकड़ों भिक्षुओं के साथ कपिलवस्तु में प्रवेश किया। यशोधरा ने एक झरोखे से स्वामी को संन्यासी के वस्त्र धारण किए नगर में भिक्षा माँगते देखा तो वह रो पड़ी। महाराज शुद्धोदन ने स्वयं जाकर भगवान का पात्र हाथ में लिया और भिक्षुओं सहित उन्हें महल में ले आए।

आनंद ने उत्तर दिया, "हो भी सकता है और नहीं भी, यदि दीक्षा देते समय पात्र का विचार किया जाय तो उनसे संघ का मंगल ही होगा, परन्तु यदि विलास की भावना से भरी कोई स्त्री संघ में प्रवेश पा गई तो उससे संघ की मान-प्रतिष्ठा को आघात भी लग सकता है।"

"फिर, तुम क्या चाहते हो?" भगवान ने आनंद से पूछा।

आनंद ने निवेदन किया, "अपनी कठिनाइयों के विचार से समूची स्त्री जाति को दीक्षा से वंचित कर देना मुझे न्याय नहीं मालूम होता। आप नियम चाहे जितने कड़े बनाएँ परन्तु उनका प्रवेश न रोकें यही मेरी प्रार्थना है।"

भगवान ने आनंद का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। प्रजावती अपनी सहेलियों सहित भिक्षुणी बन गई। उसका नया नाम गौतमी रखा गया।

प्रजावती की दीक्षा के पश्चात् अनेक स्त्रियों ने भिक्षुणी बनकर संघ में प्रवेश किया। वैशाली की प्रसिद्ध गणिका आम्रपाली को भी उन्होंने भिक्षुणी बना लिया था।



११—अंगुलिमाल डाकू

श्रावस्ती के प्रसिद्ध ब्राह्मण गार्ग्य का एक पुत्र था जिसका नाम उन्होंने अहिन्सक रखा था। बड़ा होने पर उन्होंने उसे उच्च शिक्षा ग्रहण करने के लिये तक्षशिला भेज दिया। तक्षशिला में अहिन्सक पढ़ने लिखने में दूसरे विद्यार्थियों से बहुत तेज था इसलिए सब लड़के उससे द्वेष करते थे। लड़कों ने उसे नीचा दिखाने के कई उपाय किए परन्तु गुरु की उस पर पूर्ण कृपा थी और उसे कोई हानि न पहुँची। अन्त में सब विद्यार्थियों ने मिलकर गुरू से उसके विषय में

अनेक झूठी बातें कहकर धमकी दी कि अगर उसे न निकाला गया तो आश्रम को बदनामी चारों ओर हो जायगी। गुरु अपने आश्रम की बदनामी से डरता था क्योंकि उसे राज्यों से सहायता और विद्यार्थियों से (शुल्क) फीस और दक्षिणा मिलती थी। उसने खीझ-कर अहिन्सक को बुलाकर कहा, "अब तुम्हारी शिक्षा पूर्ण हो चुकी है। तुम अपने घर जा सकते हो।" अहिन्सक ने गुरु को प्रणाम कर कहा, "आप की कृपा से ही मेरी नाव पार लगी है कृपा कर गुरु दक्षिणा का आदेश भी दें।"

गुरु जी पहले ही से खीझे हुए थे क्रोध में भरकर बोले, "जा ! एक हजार हत्याएं कर।"

विचारा विद्यार्थी बड़ी देर तक गुरु की ओर ताकता रहा फिर उनको प्रणाम कर चल दिया। वह पाँचो प्रकार के अस्त्र-शस्त्र लेकर श्रावस्ती के मार्ग में एक जंगल में रहने लगा। शरीर से बलवान, अस्त्र शस्त्र चलाने में परम प्रवीण, अहिन्सक, गुरु की दक्षिणा चुकाने के लिए हिन्सक बना। जो कोई भी उस मार्ग से जाता उसकी वह हत्या कर डालता था। बालक, वृद्ध, स्त्री-पुरुष किसी पर उसे दया न आती

थी। बड़े-बड़े बलवानों को वह क्षण भर में पृथ्वी पर गिरा देता था। हत्याओं की गिनती करने के लिए वह प्रत्येक मरने वाले की एक उँगली काटकर अपने पास रख लेता था। ये उँगलियाँ खो न जायँ इसी डर से उसने उनकी एक माला अपने गले में पहन रखी थी। इसी से लोग उसे अंगुलिमाल कहने लगे।

अंगुलिमाल के क्रूर कर्मों की कहानी शीघ्र ही श्रावस्ती भर में फैल गई। तथागत ने भी उसे सुना और एक दिन प्रातःकाल भिक्षा प्राप्त कर, भोजन से निपटकर चविर और पात्र लेकर अंगुलिमाल का उद्धार करने जंगल की ओर चल पड़े।

अंगुलिमाल ने दूर से तथागत को देखा और अपने मन में कहा, "यह श्रमण तो बड़ा निर्भय होकर इधर आ रहा है शायद यह कोई परदेशी है और इसने मेरा नाम नहीं सुना। देखने में यह ज्ञानवान और करुणामय प्रतीत होता है परन्तु मुझे इससे क्या? मुझे तो एक हजार हत्याएँ पूरी करनी हैं मेरी माला में अभी बहुत उँगलियाँ घटती हैं।"

अंगुलिमाल ने खड्ग खींच लिया और आगे बढ़-

कर पुकारकर कहा, "हे श्रमण ! ठहर जा ।"

तथायत ने कहा, "अंगुलिमाल ! मैं तो ठहरा ही हूँ । तूही चंचल है । मेरे समीप क्यों नहीं आ जाता ?"

अंगुलिमाल ने चाल तेज की परन्तु फिर भी वह तथागत के पास तक न पहुँच सका, तब वह बड़े वेग से भागा । भागते-भागते उसकी साँस फूलने लगी, पैर थक गए, शरीर शिथिल हो गया, और माथे से पसीने की धार बहने लगी परन्तु तथागत उसे उसी प्रकार एक स्थान पर खड़े मुस्कराते दिखाई दिये । वह उनके निकट न पहुँच सका ।

अंगुलिमाल ने अपने मन में सोचा अवश्य यह श्रमण कुछ जादू जानता है । उसने कहा, "हे श्रमण ! मैं प्रयत्न करके भी तुम्हारे पास नहीं आ सकता हूँ । मुझे अपने पास तक आने दो ।"

तथागत ने हँसते हुए कहा, "हे अंगुलिमाल ! हिन्सा और क्रोध से मन दुर्बल होता है और मन की दुर्बलता के कारण मनुष्य कोई भी काम ठीक प्रकार से नहीं कर पाता ।"

अंगुलिमाल ने सोचा यह श्रमण सब कुछ जानता है। इससे कुछ छिपाना व्यर्थ है। उसने कहा, "हे श्रमण! मैं स्वभाव से हिन्सक नहीं हूँ। गुरु के आदेश के अनुसार मुझे एक हज़ार हत्याएँ करना आवश्यक हो गया है। अभी उसमें बहुत बाकी हैं।"

तथागत ने उसी प्रकार प्रेमपूर्वक कहा, "अंगुलिमाल! गुरु की दक्षिणा मनुष्यों का वध करके नहीं, संसार का कल्याण करके चुकाओ। एक हजार जीवों को सन्मार्ग दिखाकर उनके पापों को नष्ट करो यही तुम्हारी गुरु दक्षिणा होगी।"

अंगुलिमाल को तथागत की बातों में सार मालूम हुआ। वह स्वयं शास्त्रज्ञ था। अब उसे तथागत के समीप जाने में जरा भी देर न लगी। उसने झुककर उन्हें प्रणाम किया। अपने अस्त्र-शस्त्र उसने नदी में फेंक दिये, वस्त्र फाड़ डाले, रत्नाभूषण जंगल में बिखेर दिये फिर भगवान के दिए हुए कषाय पहनकर उनको प्रणाम कर उन्हीं के पीछे-पीछे जेतवन आया।

इधर कौशलनरेश प्रसेनजित अंगुलिमाल से प्रजा की रक्षा करने के लिए सेना लेकर वन की ओर जा रहे थे। मार्ग में उन्होंने सोचा तथागत के दर्शन

भी करता चलूँ और जेतवन में पहुँच उन्हें प्रणाम किया।

तथागत ने पूछा, "आज असमय कैसे ?"

प्रसेनजित ने कहा, "महाराज अंगुलिमाल के उपद्रवों से प्रजा अत्यंत दुखी है। मैं सेना लेकर उसी ओर जा रहा हूँ। या तो उसे जीवित पकड़कर दंड दूँगा या युद्ध में उसका बध करूँगा।"

तथागत ने हँसते हुए कहा, "और यदि अंगुलि-माल तुम्हें यहाँ अभी मिल जाय तो !"

महाराज प्रसेनजित का मुंह आश्चर्य से फैला ही रह गया। वे कुछ बोल न सके। केवल एक टक भगवान की ओर देखते रह गए।

तथागत का आदेश पाकर भिक्षुगण महाराज प्रसेनजित को नवीन भिक्षु अंगुलिमाल के पास ले गए। महाराज ने देखा उनके मुख पर क्रूरता और हिंसा का कोई चिन्ह नहीं है। वे समुद्र की भाँति गंभीर और शांत हैं। महाराज ने सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया और तथागत की शक्ति की सराहना करते श्रावस्ती को लौट गए।



१२—श्रावस्ती

उस समय कोशल की राजधानी श्रावस्ती थी। महाराज प्रसेनजित यहाँ राज्य करते थे। उनके राज्य में प्रजा सुखी थी विद्वानों का आदर था और व्यापारी वर्ग सम्पन्न था। उनकी सुशिक्षित सेना से दूसरे राजा आतंकित रहते थे।

श्रावस्ती के एक धनी सेठ का नाम था अनाथ-पिंडक। उसने राजगृह में अपने एक सम्बन्धी के घर पर भगवान बुद्ध के दर्शन किए थे और तभी से वह उनका भक्त हो गया था। श्रावस्ती लौटने पर उसने

वहाँ एक विहार बनाने का निश्चय किया। नगर से बाहर राजकुमार जेत का एक बहुत बड़ा बाग था। अनाथपिंडक ने उस बाग की भूमि विहार के लिए पसंद की परन्तु राजकुमार उसे देने को तैयार न हुआ। अन्त में तय हुआ कि जितनी भूमि को अनाथपिंडक सोने के सिक्कों से ढक देगा उतनी उसे दे दी जायगी। अनाथपिंडक ने गाड़ियों में भर-भर कर सोने की मोहरें भेजीं और सारे बाग की भूमि उनसे ढक दी। इस बाग में करोड़ों रुपयों की लागत से बड़े-बड़े भवन बनाए गए जिनमें तथागत तथा उनके हजारों साथियों के रहने के लिए सब प्रकार की सुविधा थी। उनकी आवश्यकता की सब वस्तुएँ भी वहाँ रखी गई थीं। इसी विहार का नाम जेतवन था और भगवान वहाँ आकर भिक्षुओं सहित निवास किया करते थे।

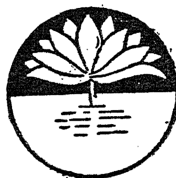
महाराज प्रसेनजित ने भी जेतवन में भगवान के दर्शन किए। वे एक धर्मभीरु राजा थे। ब्राह्मणों तथा भिक्षुओं का वे समान रूप से आदर करते थे। एक बार उन्हें रात्रि में भयंकर चीत्कार सुनाई दिया। ब्राह्मणों ने कहा यह बहुत ही अमंगलकारक शब्द है। इसकी शान्ति के लिए यज्ञ और बलि का विधान होना चाहिए। राजा ने स्वीकृति दे दी और यज्ञ की तयारी

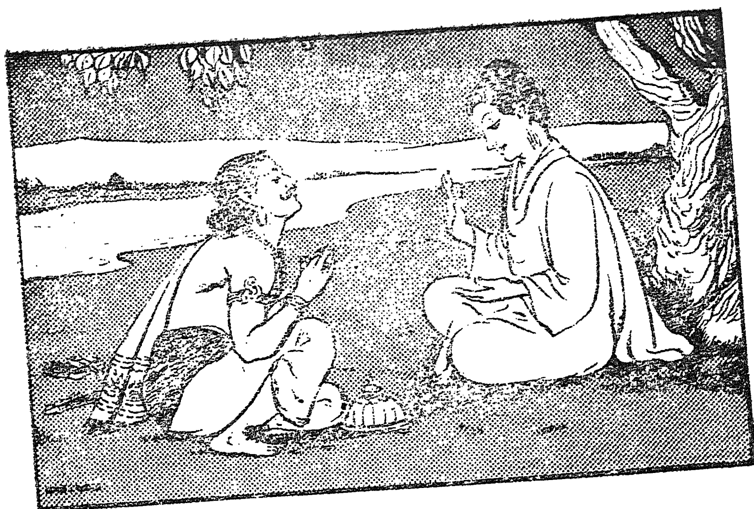
होने लगी । यज्ञ स्थान के पास हजारों पशु-पक्षी और अनेक प्रकार के जीव बलि के हेतु लाए गए । नर-बलि की भी व्यवस्था की गई ।

महारानी मल्लिका ने जब यह सब हाल सुना तो वे इस विशाल हत्याकांड को रोकने के लिए महाराज के पास गईं । महाराज को समझा-बुझाकर वे भगवान बुद्ध के पास ले गईं । तथागत ने महाराज को इस जन्म और पूर्व जन्मों की कथाएँ सुनाकर हत्यारा यज्ञ बन्द कराने को राजी कर लिया । यज्ञ बन्द हो गया परन्तु ब्राह्मणों का एक दल भगवान बुद्ध का कट्टर विरोधी हो गया ।

श्रावस्ती के एक अन्य धनी सेठ की पत्नी विशाखा भी भगवान पर बड़ी श्रद्धा रखती थी। उसने पूर्वाराम नामक विहार बनवाकर संघ को भेंट किया।

इस प्रकार श्रावस्ती बौद्धों का एक प्रसिद्ध तीर्थ बन गया ।





१३—मगध

उस समय उत्तर भारत में कोशल और मगध के राजा बहुत प्रभावशाली थे। मगध के राजा बिम्बसार को सब प्रकार योग्य समझकर कोशल के राजा ने अपनी कन्या समर्पित कर दी थी। बिम्बसार के पुत्र अजातशत्रु ने सयाने होने पर अपने वृद्ध पिता का वध कर डाला और स्वयं राजा बन गया। पति के शोक में महारानी ने भी प्राण त्याग दिये। इधर कोशल के राजा का देहान्त हो जाने पर प्रसेनजित गद्दी पर बैठा। अजातशत्रु के आचरण से प्रसेनजित उससे घृणा

करने लगा और काशी के समीप के ग्राम, जो उसके पिता ने बिम्बसार को दहेज में दिए थे, अपने अधिकार में ले लिए। अजातशत्रु ने इन ग्रामों पर अधिकार करने के लिए सेना भेजी। कई बार भयंकर युद्ध हुए परन्तु निर्णय न हो सका।

अन्त में दोनों पक्षों ने तथागत के सामने मामला रख दिया। तथागत ने मामा-भांजे का झगड़ा निपटाने के लिये प्रसेनजित की कन्या का विवाह अजातशत्रु से करा दिया और वे ग्राम दुबारा दहेज में अजातशत्रु को मिल गए।

कहावत है कि यथा राजा तथा प्रजा। अजातशत्रु एक विचारहीन और क्रोधी राजा था। इसी से उसके आस-पास छल-कपट जानने वाले लोगों के दल इकट्ठे हो गए थे। देवदत्त यद्यपि भिक्षु जीवन अपना चुका था परन्तु भगवान के प्रति उसका द्वेषभाव कम नहीं हुआ था। संघ में उसका अच्छा सम्मान था परन्तु वह तथागत से अपने को श्रेष्ठ सिद्ध करने की धुन में संघ छोड़कर स्वतन्त्र हो गया। उसने अपने संघ के बड़े कड़े नियम बनाए। लोगों ने आरम्भ में उस पर श्रद्धा की परन्तु बाद में, जब लोगों को मालूम

हो गया कि वह स्वयं उन नियमों का पालन नहीं करता तो लोग उससे घृणा करने लगे। इसी समय उसने अजातशत्रु से मेल कर लिया। अजातशत्रु ने उसके संघ का सारा खर्च देना स्वीकार किया। इस प्रकार देवदत्त के संघ में भिक्षुओं को माँगने की आवश्यकता न रही और उनका जीवन जनता से अलग राजाश्रय पर निर्भर हो गया। बिम्बसार की हत्या के उपरान्त लोग अजातशत्रु और देवदत्त दोनों की निन्दा करने लगे। देवदत्त ने सोचा, "जब तक तथागत जीवित हैं मेरी प्रतिष्ठा न हो सकेगी।" यही सोचकर उसने उनकी हत्या के लिए कई प्रयत्न किए परन्तु वे सब निष्फल रहे। सहसा एक दिन यह समाचार आया कि पृथ्वी फट गई और देवदत्त उसमें समा गया।

अन्त में अजातशत्रु तथागत की शरण में आया। इस प्रकार मगध में तथागत और उनके अनुयायियों की प्रतिष्ठा बढ़ी।





१४—वैशाली

मगध की सीमा से लगा हुआ वैशाली का गण-राज्य था। यहाँ कोई राजा न था। जनता पाँच वर्ष के लिए एक गणनायक का चुनाव करती थी। सब काम गणसंस्था (संसद) की राय से होता था। गण में लिच्छवि क्षत्रियों का बहुमत था। ये लोग नियमों का पालन बड़ी तत्परता से करते थे। कभी किसी अन्य देश पर वे आक्रमण न करते थे परन्तु अपनी रक्षा की पूरी व्यवस्था उन्होंने की थी। गंगा का मार्ग उनके लिए खुला था जिससे वैशाली व्यापार का एक

बहुत बड़ा केन्द्र बन गया था। यहाँ के व्यापारी भारत के बाहर ब्रह्मा, स्याम और बाली आदि द्वीपों में भी व्यापार करते थे। व्यापार के कारण ही वैशाली एक सम्पन्न राज्य बन गया था। मगध का राजा अजातशत्रु गंगा तट पर एक बड़ा नगर बसाकर इस व्यापार को हड़पना चाहता था। परन्तु वह नगर बन न पाता था। अवसर पाते ही वैशाली की सेना उसे नष्ट कर डालती थी। अजातशत्रु वैशाली को दुर्बल बनाकर फिर उससे युद्ध करना चाहता था। मगध का मन्त्री वर्षकार बड़ा कूटनीतिज्ञ था। उसने राजा से झूठ-मूठ का झगड़ा कर लिया। राजा ने उसका अपमान करके राज्य से निकाल दिया। वैशाली के लोग इस प्रपंच को न समझ सके और वर्षकार को अपने राज्य का मन्त्री बना दिया। धीरे-धीरे वर्षकार ने लिच्छवियों में फूट डाल दी और उनकी एकता भंग कर दी।

वैशाली में एक नियम यह था कि गण चाहे जिस रूपवती कन्या को उसके पिता से लेकर गणिका बना देता था। आम्रपाली नाम की एक परम रूपवती कन्या को इसी प्रकार गणिका बनाया गया था।

परन्तु अम्रपालो ने अपने रूप का पूरा मूल्य लिया। उसने नगर का सबसे श्रेष्ठ महल अपने रहने को और राज्य का पूरा वैभव (धन, संपत्ति, दास, दासी, हाथी, घोड़े रथादि) लेकर अपने को गण को सौंप दिया। इस प्रकार आम्रपाली महारानियों से भी अधिक शान-शौकत से वैशाली में रहने लगी परन्तु अपने इस आचरण से उसके मन में बड़ी ग्लानि रहती थी।

मगध का राजा अजातशत्रु गुप्त रूप से आम्र-पालो के पास आता था। उससे उसे एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ जो गुप्त रखा गया।

इसी समय वर्षकार का इशारा पाकर मगध की सेना ने वैशाली पर आक्रमण कर दिया। वैशाली ने फूट का फल पाया। वर्षकार ने भीतर का सारा भेद पा लिया था। वैशाली उजड़ गई परन्तु मगध की सेना को भी बहुत हानि उठानी पड़ी।

आम्रपालो का मन अब संसार से उचट गया। उसने पुत्र को अजातशत्रु के पास मगध भेज दिया। वैशालो के लोग अब उस पर संदेह करने लगे। उसे स्वयं अपने ऊपर घृणा होने लगी थी।

उसी समय भगवान तथागत के वैशाली आने का समाचार पाकर सारे नगर में उत्साह की एक लहर दौड़ गई। लिच्छवियों ने जब सुना कि भगवान नगर से बाहर आम्रपाली के बाग में ठहरे हैं तो वे सुन्दर वस्त्र पहनकर रथों पर सवार हो ठाट-बाट के साथ उन्हें निमंत्रित करने के लिए चले। परन्तु मार्ग में ही उनकी भेंट आम्रपाली से हो गई जिसने उन्हें बताया कि भगवान ने उसका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया है।

भिक्षुओं सहित भगवान को भोजन कराने के उपरान्त आम्रपाली ने उनका उपदेश सुना।

उसी दिन से आम्रपाली के जीवन में बड़ा परिवर्तन हो गया। उसने मांस खाना और शराब पीना छोड़ दिया। मूल्यवान वस्त्रों और अलंकारों को उसने उतार दिया। भगवान ने देखा कि आम्रपाली का मन पवित्र हो गया है अतः उसे भिक्षुणी बनने की अनुमति मिल गई। भिक्षुणी बनने पर उसका नाम अम्बिका पड़ा।

—:*:—



१५—महा परिनिर्वाण

इस प्रकार जब उत्तराखण्ड के मध्य भाग में एक सिरे से दूसरे सिरे तक भगवान तथागत की शिक्षाओं का व्यापक प्रभाव हो गया उसी समय भिक्षु संघ को उसके दो महान नेताओं सारिपुत्र और मोग्गलायन के देहान्त हो जाने से एक बड़ा भारी धक्का लगा। अब महास्थविरों में तथागत के निकट रहकर संघ का संपूर्ण उत्तरदायित्व सम्हालने वाला सिवा आनन्द के और कोई न था। इसी समय तथागत ने एक दिन उन्हें बुलाकर कहा, "आनन्द ! आज से तीन मास पश्चात् तथागत का परिनिर्वाण होगा।" आनंद

पर इस संदेश का गहरा प्रभाव पड़ा । एक ओर तथा-गत के वियोग की कल्पना मात्र से वे दुखी हो रहे थे दूसरी ओर सारिपुत्र और मोग्गलायन के न रहने पर भिक्षुओं के विशाल संघ और संपूर्ण बौद्ध धर्म की समुचित व्यवस्था का उत्तरदायित्व भी उन्हें वहन करना था । उन्होंने तथागत का संदेश जहाँ-जहाँ बौद्ध विहार और धर्मकेन्द्र थे सब जगह भेजवा दिया । आनन्द स्वयं तथागत की सेवा के लिए उनके समीप ही रहे ।

वैशाली और मगध की सीमापर के गाँवों में घूमते हुए तथागत पावा पहुँचे । यहाँ चुन्दकर्मार पुत्र नामक भक्त गृहस्थ ने उनका भिक्षु संघ सहित बड़े आदर से स्वागत किया । चुन्दकर्मार पुत्र को इस बात की बड़ी चिन्ता थी कि तथागत का परिनिर्वाण किसी प्रकार रोका जा सके तो अच्छा है । उसने प्रसिद्ध वैद्यों के परामर्श से शूकर मार्दव बनवाया ।

भात बड़ा स्वादिष्ट बना था और तथागत को रुचिकर भी हुआ परन्तु तीव्र औषधियों के प्रभाव से उनको खून गिरने की बीमारी हो गई । भगवान ने इस भयंकर पीड़ा को सहन करते हुए भी अपना नित्य

उपदेश देने और आगे चलने का कार्य जारी रखा। उसी कमजोरी की हालत में उन्होंने कुकुत्था नदी में स्नान किया और थक कर चुन्दकर्मार पुत्र की संघाटी बिछवाकर लेट गए। उसी समय तथागत ने आनन्द को बुलाकर कहा, "आज मेरे परिनिर्वाण का दिन है। मुझे अपने जीवन में दो भात बड़े महत्व के मिले हैं। एक वह, जिसे खाने पर मुझे बोधि की प्राप्ति हुई और दूसरा वह जिसे खाकर आज मुझे परिनिर्वाण जैसी दुर्लभ वस्तु सुलभ हो गई। देखो चुन्दक को मेरे पश्चात् किसी प्रकार का क्षोभ न हो।"

चुन्दक सामने ही बैठा फूट-फूटकर रो रहा था। सब लोग आश्चर्य कर रहे थे कि परिनिर्वाण के समय भी तथागत को लोगों का कितना ध्यान है। इसी समय तथागत ने कहा, "आनन्द ! मुझे नदी के उस पार कुशीनारा की सीमा में शालवन में ले चलो। मेरा परिनिर्वाण वहीं होगा।"

इस समय तथागत अत्यंत अशक्त हो गए थे। उनसे चला नहीं जाता था परन्तु सहारा लेकर बैठते-उठते बड़ी कठिनता से वे हिरण्यवती के शालवन में पहुँचे। वहाँ जाकर आनन्द ने एक शाल वृक्ष के नीचे एक चारपाई बिछवा दी जिसपर भिक्षुओं के

वस्त्र बिछाकर तथागत को लिटा दिया गया। इस समय वे अत्यन्त थक गए थे और बोलने में भी उन्हें कष्ट होता था। महास्थविर आनन्द इस दृश्य को देखकर अस्थिर हो गए और एक ओर जाकर रोने लगे। उस समय अपने को स्थिर कर तथागत ने क्षीण स्वर में पुकारा, "आनन्द !"

आनन्द के पास आने पर उन्होंने कहा, "आनन्द ! तथागत में अनुरक्त भिक्षु और भक्त तथागत की शरीर पूजा करेंगे। तुम उसकी पर्वाह मत करना। तुम सच्चे पदार्थ के लिए प्रयत्न करना। सत् अर्थ में अप्रमादी, उद्योगी और आत्म संयमी हो विहरना।"

आनन्द ने अपने को सम्हाला। उस समय का एक-एक क्षण उन्हें अत्यन्त मूल्यवान प्रतीत हुआ। उन्होंने भगवान के कान के पास जा धीरे से पूछा, 'तथागत के शरीर को कैसे क्या करना होता है ?"

भगवान ने अत्यन्त क्षीण स्वर में उत्तर दिया, "जैसा एक चक्रवर्ती का होता है।"

धीरे-धीरे शालवन में भक्तों और भिक्षुओं की भीड़ एकत्र हो गई। आनन्द ने लोगों को मना किया कि वे भगवान को कष्ट न दें। भगवान ने अत्यन्त शाँत

भाव से नेत्र खोले और सुभद्र को पास बुलाकर उसे उपदेश दिया। यह सुभद्र ही तथागत का अन्तिम शिष्य था। इसके पश्चात् भगवान ने सब भिक्षुओं को सम्बोधन कर कहा, "हे भिक्षुओ! धर्म के विषय में यदि कोई शंका हो तो अभी पूछ सकते हो।" कोई कुछ नहीं बोला। तब भगवान ने नेत्र बन्द कर लिए और समाधिस्थ अवस्था में रात्रि के पिछले पहर में उन्होंने शरीर त्याग दिया।

कुशीनारा के मल्लों ने तथागत का अन्तिम संस्कार बड़ी धूम-धाम से करने की तयारी की। परन्तु सबको महान् आश्चर्य हुआ जब प्रयत्न करने पर भी चिता ने अग्नि ग्रहण न की। इसी समय महाकाश्यप अपने ५०० भिक्षुओं सहित शालवन में आए। उन्होंने वस्त्र हटाकर भगवान के चरण खोले और अपने साथियों सहित उनकी वंदना की।

इसके उपरान्त चिता में से स्वयं अग्नि प्रगट हुई और चिता बड़े वेग से प्रज्वलित हो उठी।

भगवान की चिता ठंडी होने पर पवित्र धातु (जली हुई अस्थियाँ या फूल) का थोड़ा-थोड़ा अंश

सब राज्यों और पवित्र स्थानों को दिया गया। जिन पर भक्तों द्वारा भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में स्तूप बनाए गए।

इस प्रकार 'बहुजन हिताय और बहुजन सुखाय' का महामन्त्र संसार को सिखाकर भगवान तथागत ने महा परिनिर्वाण प्राप्त किया। भगवान बुद्ध की यह महायात्रा ५५० जन्म में पूरी हुई। ५४९ जन्मों में वे बोधिसत्व कहलाए और पूर्व बुद्धों ने उन्हें आशीर्वाद दिया कि वे आगे चलकर बुद्ध होंगे। अन्तिम जन्म में उन्हें बोधि प्राप्त हुई और इसके पश्चात् परिनिर्वाण होने पर फिर जन्म ग्रहण करने की आवश्यकता न रही।

